राव बिभौर
भाई साहिब भाई वीर सिंह
Bhai Vir Singh Sahitya Sadan
भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली-110 001

राव बिभौर

भाई साहिब भाई वीर सिंह

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : 20/-

राव बिभौर

रात काफी बीत गयी है पर राव जी घर नहीं लौटे। 'रानी मूर्छित पड़ी है। दासियां उसकी कलाई पकड़े बैठी हैं। वैद्य जी पास ही बैठे हैं और दवा दे रहे हैं, पर अभी होश नहीं आया है। राव की तरफ एक के बाद एक आदमी भेजा जा रहा है, पर वे अभी लौटे नहीं हैं।

सवा पहर रात बीत गयी थी जब राव उदयसैन महल वापस लौटे। रानी की दशा देखकर बहुत घबराये। वैद्य से पूछा तो उसने बताया—कोई गहरा सदमा पहुँचा है। उसी का असर है। नाजुक समय बीत चुका है, अब तबियत ठीक हो रही है। नाड़ी ठीक चल रही है, श्वास भी ठीक है। कुछ समय में ही होश आ जायेगा। अब कोई खतरा नहीं।' फिर राव ने एक दासी से कारण पूछा, तो उसने बताया—महाराज जी! अच्छे भले बैठे हुए बातें कर रहे थे। जो संसार में हो रहा है उसके बारे में सवाल करते रहे। जब उन्हें बताया गया कि पहाड़ी राजाओं की विजय हुई है और गुरू जी घेरे में घिर कर घायल हो गये तथा देह त्याग गये हैं तब इधर-उधर देखकर चुप हो गये उनकी आँखें नहीं झपकी और एकदम गिर गये। तभी से अभी तक होश नहीं आया है। वैद्य जी पूरा जोर लगाकर थक गये, पर दशा वैसी ही है।

राव समझ गया कि रानी के हृदय को गहरा आघात पहुँचा है—उसी का यह प्रभाव है। कुछ पल सोचने के बाद राव ने वैद्य और दासियों को बाहर भेज दिया और रानी का हाथ अपने हाथ में लेकर प्यार से सहलाया, फिर धीरे से दबाया और कान के साथ मुंह ले जाकर धीरे से कहा—प्रियवर! गुरू जी बिसाली कुशलता से पहुंच गये हैं। इस बात को कई बार रानी के कान में दुहराया इससे रानी ने आँखें खोल दीं। यह देखकर राव ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—गुरू जी कुशलता से बिसाली पहुँच गये हैं।

रानी—हैं! क्या! (कुछ पल चुप रहकर) आपने क्या कहा?

राव—गुरू जी कुशलता से हैं और बिसाली पहुँच गये हैं।

रानी—हैं ! क्या बिसाली आ गये हैं?

राव—गुरू जी सकुशल हैं।

रानी—हैं ! सकुशल हैं?

राव—सच ! कुशलता से हैं।

रानी—मेरी कसम, सच बताओ।

राव—यह सच है। वे तो दुश्मनों को मार कर, उन्हें भगा कर, नदी पार करके बिसाली आ गये हैं।

रानी—कहाँ?

राव—बिसाली के राज्य में परिवार और लश्कर समेत पहुँच गये हैं।

रानी—और शत्रु?

राव—अपना सिर धुन रहे हैं। विजय नहीं मिली इसलिए अपना सिर पीट रहे हैं। नवाब सरहिंद वापस लौट गया है।

रानी की आँखें मुंद गयीं। वह अब बेहोश नहीं हुई। ईश्वर की कृपा में वह खो गयी थी—उसकी आँखों से आंसू गिरे। जैसे-जैसे आंसू गिरे चित्त स्वस्थ हुआ, सिर साफ हो गया, स्फूर्ति आ गयी, पर अभी वह हिल-जुल नहीं पा रही थी।

2

दो-एक दिन रानी पलंग पर ही लेटी रही। शरीर में शक्ति नहीं रही थी, पर वह वैसे ठीक थी—तीसरे दिन तक काफी स्वस्थ हो गयी।

शाम का समय था, तारे चमकने लगे थे, नीला-नीला आकाश कुछ बूंदें बरसा कर निर्मल हो गया था। पलंग हवा में बिछा है, राव पास ही बैठा हुआ है। कोई दासी पास में नहीं है। धीरे-धीरे दोनों में मर्म-स्पर्शी वार्तालाप हो रहा है—

रानी—सांई जी ! यह चुप कब तक? कब दर्शन होंगे?

राव—हां, बताओ तो सही आपको आघात कैसे पहुँचा।

रानी—हाय ! याद करते ही फिर वही पीड़ा होती है। सांई ! ऐसा समय तो वैरी को भी न दिखाये।

राव—यदि दुख होता है तो मत बताओ।

रानी—नहीं जी, बताती हूं निक्को बाहर से दौड़ी-दौड़ी आयी और कहने लगी—पापियों का जोर चल गया, गुरू जी घायल होकर.........बस क्या बताऊँ? मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया, होश गुम हो गये, जगत अंधकार में डूबा दिखायी देने लगा। मैं अकेली थी डर कर मूर्छित हो गयी।

राव—निक्को बहुत मूर्ख है, वह तो महाबली हैं। वास्तव में उनका सेनापति साहिब चंद उस दिन मारा गया था। उस महाबलि ने बड़ी वीरता से संग्राम रचा था और शूरवीरता दिखलायी थी। उसकी शहीदी को ही शत्रुओं ने धूम मचा दी कि वे गुरू जी स्वयं थे। उस निराधार उड़ती हुई खबर हो ही निक्को ने आपको सुना दिया। आपको दुख हुआ पर परमात्मा की आपार कृपा है कि वह खबर झूठी थी। वास्तव में वे नदी को पार कर गये हैं।

उन्होंने घोर संग्राम किया। सेना सहित, यहां तक कि घायलों और मुर्दों सहित नदी पार कर जाना सच्ची विजय है। इससे मूर्ख शत्रुओं के दिल टूट गये और वजीर खां सिर धुनता वापस चला गया। सभी राजा अपने खाली हो गये खजानों को देखकर दुखी हैं। वैसे वे संसार को बता रहे हैं कि उन्होंने गुरू जी को नदी के पार भगा दिया।

राव—अब वे राव बिसाली के पास टिके हुए हैं। वही सारे योद्धा आराम कर रहे हैं। खुद शिकार पर जाते हैं, नदी पार करके बिलासपुर राजा की सीमा में भी निर्भय विचरण करते हैं, उसकी जरा नहीं चल पाती।

रानी—वे कब चलेंगे? आप उन्हें कब आमन्त्रित करेंगे।

राव—जब आमन्त्रित करेंगे तभी आयेंगे।

रानी—अब तो पिघल जाओ, मुझ पर दया करो, प्यार क्या और चुप का घूंट क्या?

राव—अपनों और प्यारों पर कौन दया नहीं दिखाता, पर दैवगति प्रबल है। प्यार और चुप इसी में स्वाद है। प्यार और शोर, प्यार और पुकार, वह तो प्यार का व्यापार है।

इतने में निक्को फिर उछलती हुई आ गयी और हँसते हुए बोली–मैं अच्छी खबर लायी हूं।

रानी–कोई पक्की बात हो तो बताना। ऐसे ही बकवास मत करना।

निक्को–जी पक्की बात है। सतिगुरू जी ने बिसाली में डेरा लगा दिया है। संगत वहां आने-जाने लगी है, परन्तु आस-पास की ही। ऐसा लग रहा है कि अब वहीं रहेंगे। पार शायद अब न जाएँ।

रानी–सूचना तो सुन्दर है, पर कच्ची है, कोई और सुन्दर बात बताओ।

निक्को–बताऊँ ! जरूर ! अब वे शिकार पर जाते हैं तो दूर-दूर तक निकल जाते हैं। कल हमारे राज्य में भी उनके चरण पड़े थे।

यह सुनकर रानी के नयन भर आये, परन्तु राव के नयन बंद हो गये।

3

जब सतिगुरू जी ने नाहन के राज्य में पउंटा बसाया था और जमुना किनारे खेल रचाये थे तब नाहन के राजा को भवसागर से पार उतारा था। उसने गुरू जी को अपने राज्य में कुछ दिन रखा था, गुरू जी की सेवा-भक्ति की थी। यह रानी तब एक सुन्दर कन्या थी और नाहन के राजघराने की पुत्री थी। गुरू जी फिर पउंटा चले गये थे और बाद में आनन्दपुर चले गये। इस कन्या के विवाह का प्रबन्ध माता-पिता करने लगे। गुरबानी का प्यार कन्या

के हृदय में पड़ चुका था। वह नियम से पाठ करती थी। सतिगुरू के आलौकिक दर्शन से वह जी उठी थी। वह उनकी कदर और प्यार में ही सुरजीत थी। जब माता-पिता उसके लिए वर ढूंढ़ रहे थे तब वह स्यानी उमर की हो गयी थी। उसने देश-लाज का भय छोड़ अपनी मां से कह दिया-मुझे ऐसे घर में नहीं भेजना जो गुरू जी का विरोधी हो। सभी पहाड़ी राजा उनके विरोधी हैं, और उनसे ईर्ष्या रखते हैं। जैसे हमारा नाहन का घराना गुरू जी से प्यार करता है, ऐसे ही किसी घर में मुझे भेजना।' माता का हृदय अपनी पुत्री के प्रति कोमल होता है। वह कोमलता कमाल की होती है। सतलुज के आर-पार, जमुना के आस-पास उसके माता-पिता ने कई घर देखे पर वे वैर-भाव वाले थे और जो प्रेम-भाव वाले थे वहां योग्य वर नहीं मिला। बड़ी खोज के बाद बिभोर के राव का घर मिला। यहां यह तो मालूम चल गया कि राव कभी सतिगुरू से नहीं लड़ा, पर राव के स्वभाव का पता नहीं चल पाया कि कैसा है। सतिगुरू से प्यार वाला है कि वैर वाला। काफी पता करने पर यह मालूम हुआ कि राव चुप रहने वाला व्यक्ति है, उसके हृदय में क्या है किसी को पता नहीं, पर जब कभी युद्ध होता है तो यह लड़का करवट लेकर इतना जरूर कहता है कि छोड़ो राजाओं का विरोधी पक्ष, इनके साथ हम क्यों मिलें? वे मूर्ख हैं। लड़के का यह रूझान राजा को भी बचाकर रखता है। बिभोर के लड़के का यह रूख मालूम चल जाने पर कन्या का रिश्ता कर दिया गया-और विवाह हो गया।

जब कन्या नाहन से बिभौर आयी तो उसने ससुराल को गुरू वैर से रहित पाया। उसने यही सुना कि बड़े राव जी गुरू के पक्ष में ही बात करते हैं। अब उसकी इच्छा थी कि वह अपने पति को किसी तरह गुरू का प्रेमी बनाये। वह वाणी को प्रेम करने वाली थी, नित्य सुखमनी का पाठ करती थी, उसका पति सुनता था, पर कहता कुछ नहीं था। वह कई बार गुरू जी की प्रशंसा करती, वाणी की महिमा सुनाती, अपनी नाम प्राप्ति की अभिलाषा के बारे में बताती, वह चुपचाप सुनता, पर जवाब कुछ नहीं देता। यदि कभी जवाब दे भी तो कहे–फल बिना बोले ही लगते हैं।

कुछ समय बाद उसका पति राव हो गया, अब वह रानी हो गयी। स्वतन्त्रता और अधिकार बढ़ गए। उसने राव होकर भी दूसरा विवाह नहीं किया बल्कि उसका प्यार अपनी पत्नी के प्रति और अधिक हो गया। प्रियवर के अधिकार बढ़ गए थे पर एक ही बात नहीं बढ़ी थी–उसे लगता कि राव के मन में बाणी और गुरू चरणों के प्रति नहीं बढ़ा है। रानी को भय था कि कहीं बिभोर राजाओं के साथ न मिल जाए, उसके राज्य में सिखों या गुरू के विरूद्ध कोई बात न हो, कहीं राव को मालूम चल जाए तो वह उसे ही दुरूस्त न कर दे, पर गुरू का यश या गुरू का नाम, गुरबाणी का पाठ और राव का उसे सुनने का उद्यम–रानी ने राव में ऐसी कोई बात नहीं देखी। रानी यह देखकर कहती–हे प्रभु ! मेरे लेख लिखते हुए, दुखों

से साफ रखते हुए, जब मेरे मन की इच्छा का समय आता था तब तुम वह जगह खाली छोड़ देते थे। पर अच्छा ! मेरा गुरबाणी का प्यार उस खाली स्थान में खुद ही सुन्दर सा लिख लेगा। जितना जोर रानी में था तथा एक पतिव्रता नारी जितना कुछ कर सकती थी उसने किया–पर बात पूरी होती नजर नहीं आ रही थी। हां, रानी के मन में यह भ्रम जरूर था मि राव साहिब उससे कुछ छिपाते हैं।

एक दिन राव और रानी रात को काफी समय तक बात करते रहे–प्यार सम्मान के प्रसंग चल रहे थे। रानी ने गुरू का यश सुनाया, (पाठ सुनाया) राव ने सुना पर कहा कुछ नहीं। फिर वह सो गया। दो बजे के लगभग राव चुपचाप उठा, पल भर के लिए वह रानी के सिरहाने खड़ा होकर उसे देखता रहा। वह समझ गया कि रानी गहरी नींद सो रही है। अब राव चुपचाप वहाँ से चल पड़ा, पर आज रानी जाग रही थी। राव के इस तरह खिसकने पर उसे आश्चर्य हो रहा था। वह दबे पांव उसके पीछे गयी। राव ने दूसरे कमरे में जाकर एक चाबी निकाली और अलमारी को लगाई उस अलमारी के अन्दर सीढ़ियां थी, वह उन सीढ़ियों से नीचे उतर गया। दरवाजा बन्द हो गया। जब थोड़ी रात रह गयी तो उसी अलमारी में कुछ आहट हुई। रानी छिप कर अभी भी देख रही थी, वह समझ गयी कि राव वापस आ गया है। वह जल्दी से पलंग पर आकर लेट गयी। राव ने देखा कि रानी वैसे ही सोयी हुई है तो वह भी सो गया।

अब रानी के जागने का समय था। उसने उठकर स्नान किया और फिर पाठ करने लगी। जब पाठ का भोग पड़ा तो दिन चढ़ आया था। रोज की तरह रानी ने राव को उठाया, स्नार कराया, कपड़े पहनाये तथा कुछ खिला कर दरबार में भेजा।

औरतों को हैरानी जल्दी चिपक जाती है। इतनी अच्छी रानी होकर भी वह हैरान थी कि अलमारी से रास्ता कहाँ जाता है। राव साहिब आज चाबियाँ भी भूल गये थे। राव जी के जाने के बाद मौका देखकर रानी वहाँ पहुँची। उसने अलमारी को खोला। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया, परन्तु अलमारी का दरवाजा खुला ही छोड़ दिया और वह नीचे उतर गयी। आगे एक और दरवाजा था, पर वह भिड़ा हुआ था। उसको खोल कर वह अन्दर गयी तो एक छोटा सा कमरा था। कमरे में कालीन बिछा हुआ था, तख्तपोश पड़ा था, ऊपर मंजी साहिब और चौर थी, एक तरफ खुरा था जिस पर चौकी पड़ी थी और उस पर जल से भरा एक लौटा था। अब कमरे को टटोलने पर रानी को एक और अलमारी नजर आयी। उसे खोला तो उसके अन्दर एक छोटे पलंग पर श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की छोटी बीड़ आराम में विराजमान थी। इस प्यारे दर्शन से उसका सिर झुक गया। फिर गहरे प्यार और विहवलता के स्वर में वह बोली–हाय विधना ! तेरे छल ! मुझे इतना गुरू प्रेमी पति देकर फिर क्यों तड़पाया। मेरी इच्छा पूरी करके, मेरे सीने से लगाकर भी मुझे वियोग में रखा। यह अनोखी

चाल मेरे साथ क्यों चली? (सिर हिलाकर) वाह ! वाह ! ! प्रभु की कृपा है ! मेरा शरीर गुरू प्यारे की सेवा में सफल हुआ है। मुझ दासी को सिख सिरताज मिला है। मुझे मालूम नहीं था, पर कोई बात नहीं। विधना बेदर्द है, किसी को गोद में मुराद देती है तब भी उसकी आँखों के आगे पर्दा तान देती है। प्रभु की कृपा से यह पर्दा भी दूर हो गया है।

रानी ने अब बड़े प्यार से प्रकाश किया और गद-गद स्वर में पाठ किया। रूमाल डाला, कमरे को सिर के दुपट्टे के साथ साफ किया, फिर सिर पर वही दुपट्टा लेकर कहा-

गुर सिखा की हरि धूड़ि देहि
हम पापी भी गति पाहि।।

कृपाण को उठाया, देखा और फिर रख दी, फिर गुरू बाबा को माथा टेका, अरदास की और उसी रस में भरी पीछे लौट आयी। बाबा जी का असवारा करना वह उसी मग्नता में भूल गयी। सीढ़ियां चढ़ी, दरवाजा बन्द किया, ताला लगाया और अपने कमरे में आ गयी।

4

आज दिन में बहुत काम होने से राव साहिब थक गये थे, इसलिए रात को जल्दी ही सो गये। रात के दो पहर और कुछ घड़ी ही बीती थी तभी घंटे की टंकार राव साहिब के कानों में बजी वे उठ बैठे । रानी को सोया हुआ देखकर वे चले गये। परन्तु रानी वास्तव में जाग रही थी। उठकर

पीछे-पीछे चल पड़ी। राव जी ने उसी तरह मोमबत्ती जलाकर अलमारी खोली, अन्दर से दरवाजा बन्द कर नीचे उतर गये। वे जाकर क्या देखते हैं कि श्री गुरू ग्रंथ साहिब का प्रकाश हो रहा है। उन्हें आश्चर्य हुआ, कुछ क्षण तक तो वे माथा टेकना भी भूल गये। सोचने लगे क्या वे असवारा करना भूल गये थे। यह ख्याल आते ही अफसोस हुआ। माथा टेक कर वह रो पड़ा—हाय राज्य मद ! इस दरबार का मुझ से अपमान हुआ है। एक प्यार वाले व्यक्ति की तरह, एक दास भाव वाले गुलाम की तरह मैं सावधान क्यों नहीं रहा। इस तरह से दुख और अफसोस प्रकट कर उसने फिर सोचा—अच्छा, वाह वहा ! मेरे अन्तर्यामी गुरू मुझे क्षमा करना। फिर पानी लाकर पाँच-स्नाना किया (हाथ, पैर, मुंह धोना) और एक कोने में बैठ गया। काफी समय वह चुपचाप बैठा रहा, मानों कहीं ध्यान लगा कर बैठा हो। पर फिर घबरा गया, मन जुड़ने के स्थान भ्रम में पड़ा हुआ था। उसे याद आ गया कि वह तो महाराज जी का असवारा करके गया था। यह सब फिर हुआ कैसे? मेरा भेद किस तरह खुल गया? उसके मन में बवंडर उठा। वह उठकर खड़ा हो गया। कमरे में इधर-उधर देखने लगा उसकी नजर गलीचे पर पड़ी—कुछ चमक रहा था। झुक कर देखा तो तिल्ले की कोई तार थी। अब तलाश का शौक और बड़ा। वह ध्यान से देखने लगा तो एक छोटा मोती मिला, उसने उसे उठा कर

देखा—'हे भगवान! हे भगवान।' उसने फिर देखा तो मोतियों की एक छोटी-सी लड़ी मिली। 'हां प्रियवर जी ! आपने आखिर मेरा भेद पा ही लिया। हे दाता ! मेरी यह इच्छा है कि मेरे प्रिय को हवा भी न लगे, पूरी नहीं हुई। आदमी यदि नहीं बोले तो वह बंद डिब्बी की तरह है, जिसमें पड़ी वस्तु के बारे में कोई नहीं जान सकता। मैं बहुत चुप रहा, ढक्कन को बंद रखने की बहुत कोशिश की। पर चंचल प्रियवर ! तूने मेरे अन्तर के रहस्य को हवा लगा ही दी। अच्छा ! पर कहीं यह कोई और न हो। पर और कौन हो सकता है? यह तिल्ला और तारें उसी के दुपट्टे की हैं। यह मोती दुपट्टे पर मैंने ही कह कर लगवाये थे। मैंने ही लाहौर से मंगवाये थे। हां, मेरी प्यारी पर चोर प्रियवर ! चोर की याददास्त अच्छी नहीं होती, उसे अपनी सलामती के लिए जल्दी होती है—कि वह जल्दी से जल्दी भाग जाये जिससे उसकी चोरी पकड़ी न जाए। यह जल्दबाजी ही उसे मैला करती है। वह काम को अधूरा छोड़ जाता है और कई बार अपने निशान भी छोड़ जाता है, जिससे वह पकड़ा जाता है। जल्दबाजी में दुपट्टे के मोती छोड़ गयी और असवारा करना भी भूल गयी।

इस तरह स्व कथन करते राव जी ऊपर आ गये। जल्दी से स्नान किया, कपड़े बदले और आसा की वार का पाठ करने लगे। फिर मत्था टेक कर बड़े प्यार से अरदास की। हे दाता ! मेरा प्यार निबाहना, जिस प्यार को आपने लगाया उसे मंजिल तक पहुँचाना। यह हीरे का कण मेरे

हृदय से बाहर न जाए। आज मेरा भेद खुल गया है। प्रियवर के मुंह को ताला लगाना जिससे यह भेद किसी और को मालूम न चले। हां, मुझ पर कृपा करो, अपने दर्शन दो। मेरा प्यार एक न दीखने वाली पीड़ा हो और आपके दर्शन औषधि का काम करें। मेरी छिपे रहने की चाह और छिपकर ही चले जाने की कामना पूरी हो।

5

रानी अपने कमरे में बैठी है, मन्द-मन्द पवन चल रही है। राव जी दरबार से आज जल्दी ही आ गये हैं। रानी सुखमनी का पाठ कर रही है। राव जी आकर बैठ गये और पाठ सुनने लगे। भोग पड़ा-'उतम सलोक साध के बचन। अमुलीक लाल एहि रतन।' यह पद बार-बार कानों में गूंज रहा था और एक स्वाद दे रहा था-'यह साधु के वचन है, यह प्यार के पद अमूल्य लाल और रत्न हैं। लाल और रत्नों को छिपा कर रखते हैं। हां प्यार को छाज से साफ नहीं किया जाता वह तो अमूल्य रत्न है।' यह सोच कर राव ने मोतियों की टूटी लड़ी और तिल्ले की तारें रानी के आगे रख दी और कहा-जो रत्नों को इस तरह बिखेर देते हैं वे कैसे पढ़ लेते हैं-अमुलीक लाल एहि रतन।

रानी का रंग उड़ गया, पर जल्दी ही उसने अपने पर काबू पा लिया-हाय ! मेरा भेद भी खुल गया। राव की चोरी पकड़ कर रानी ने सोचा था कि उसने मैदान जीत लिया, पर राव के हाथ में मोती और तिल्ले की तारें देख कर वह समझ गयी कि उसकी चोरी भी पकड़ी गयी। दोनों

एक दूसरे के सामने मानों एक दूसरे के चोर बैठे थे, पर वह लज्जित नहीं थे—क्योंकि वास्तव में चोर कोई भी नहीं था। दोनों एक सिद्धांत पर खड़े थे। जब दोनों की आपस में नजरें टकराती हैं तो दोनों के दिलों में अजीब से भाव पैदा होते हैं। रानी पति की बात सुन कर चुप रही, पर फिर बोली—लाल और रत्नों को डिब्बे में बंद कर सम्भाल कर रखते हैं, पर कभी न कभी उन्हें प्रकट करने के लिए। यदि उन्हें कभी भी प्रकट नहीं करना हो तो खान में पड़े हों या डिब्बे में पड़े हों—एक ही बात है। ज़ोहरियों की सम्भाल और कदरदानों की खरीद फिर किस लिए?

राव—पर चोरों से तो डब्बे और ताले ही बचाते हैं।

रानी—पर चाबियों के गुच्छे तो साधु के हाथ ही आते हैं।

राव—चाबियों को तो रत्नों से भी अधिक सम्भाल कर रखना पड़ता है।

रानी—चाबी वाले अपने मालिक के बिना और किसी को चाबी का भेद नहीं देते।

राव—धन्यवाद, प्रियवर ! धुआँ निकल जाए तो आवा पीला पड़ जाता है।

रानी—पर अच्छी वस्तुएं प्रकाश में ही सुन्दर लगती हैं। सूरज, चांद को घूंघट की जरूरत नहीं पड़ती।

राव—बीज को यदि छिपा कर न रखें तो कोंपल नहीं बनती, वृक्ष नहीं बनता। जड़ें अगर पर्दे में न हों तो वृक्ष मुरझा जाता है।

रानी–पर फल अन्धकार में नहीं पकते।

राव–पर उगने वाला बीज तो पके फल में भी छिप कर रहता है।

रानी–(सोचकर) कभी प्रकाश को छिपने की आवश्यकता अनुभव हुई है?

राव–प्रकाश अपने तेज और तीखेपन में छिपता है, सूरज पर्दा नहीं करता, पर कौन है जो उस पर नजर टिका सके।

रानी–फिर प्यार का सूरज धूमधाम से चढ़े।

राव–प्यार का कण चिंगारी की तरह होता है। चिंगारी राख में छिपी चमकती रहती है, वह हवा के झौंके नहीं सहार सकती।

रानी–चिंगारी रूई के डिब्बे में छिप कर कभी नहीं रह सकती। प्रेम की चिंगारी तो हृदय में छिपी रहती है।

राव–पर किसी को छाज में डाल कर साफ करता भी नहीं देखा।

रानी–यह तो ठीक है, पर परवाना दीपक पर आये तो किस घूंघट या चादर में छिपकर।

राव–पर जब परवाने आते हैं तो क्या वे तड़पते, मरते हुए आवाज करते हैं। प्यार पर पर्दा, प्यार चुप होना चाहिए।

रानी–तो क्या प्यार गूंगा है।

राव–हां, हयावाला है, शर्म वाला है।

रानी–बोलो तो मारे, दिखे तो पीड़ा दें।

राव—नहीं ! बोलने और दिखने की जरूरत नहीं।

रानी—आवा की आग अन्दर ही अन्दर जलती है।

राव—नहीं, जीवित शरीर की अग्नि, जिसकी न लपट होती है न चिंगारी, न धुआं होता है न लौ, फिर भी जलती है, चमकती है गर्मी देती है। वह तो जान की सलामती का जामन है।

रानी—मैं समझी नहीं।

राव—कभी अपने शरीर की अग्नि को जलते हुए देखा है? पर वह है, वह जलती है और हमारे प्राणों की रक्षक है।

रानी—जब प्रारम्भ से ही लौ लगी हो, फिर अन्दर कुछ और तथा बाहर कुछ और उसका भला कैसे निर्वाह होगा?

राव—अन्दर की लौ अन्दर रहे और बाहर की बाहर। अन्दर की लौ को बाहर के पर्दे नहीं फाड़ने चाहिए और बाहर की लौ को बाह्य रूप को ही संवारना चाहिए। लोगों से मुलाकात बाग-बगीचे तथा बजारों में हो तथा अपने प्रिय से महल के अन्दर।

रानी—गुरू जी का कथन है—गुझड़ा लघमु लालु मथै ही परगटु थिआ।

राव—लाल को गोंद लगाकर माथे पर बिंदी बनाकर नहीं लगाया जाता, उसे तो मुट्ठी में सम्भाल कर रखा जाता है। पर उसके पास होने की तासीर यही है कि वह माथे से प्रकट हो। हाँ, 'अनिक जतन करि हिरदै राखिया रतनु न छिपै छपाइआ।' छिपाने से न छिपता यह उसका धर्म

है। उसकी विशेषता है, पर जिसके पास रत्न है उसका क्या धर्म है? अनेक यत्न करके हृदय में छिपाकर रखना।

रानी—हैं तो गुरू कथन, पर सूर्य किस से छिप सकता है, प्रेम किससे घूंघट निकाले, परमात्मा किस से छिपे।

राव—'काइरे बकबादु लाइउ।' (जरा रूककर) हां, 'जिनि हरि पाइउ तिनहि छपाइउ।।'

रानी—फिर हमारा क्या हाल? दर्शन हुए, मीठे लगे, आलौकिक रोमांच हुआ। माँ-बाप ब्याह कर सोचने लगे, हमसे रोमांच नहीं छिपा। कुल की लाज, लोक लाज छोड़ कर मां को कह दिया—गुरू मधुर लगते हैं, गुरू निंदक के घर मुझे मत देना।' यदि मैं गुरू की प्रीति छिपा लेती तो आज मैं किसी विमुख के घर होती। मुझे अब घबराहट होती है कि यदि सिद्धान्त छिपा कर रखना है तो मैं अपराधिन हूं।

राव—सिद्धान्त न तो छिपा कर रखना है और न प्रकट करना। सिद्धान्त है प्रेम और उसकी लगन। इसका अपना स्वाद है। उसे सम्मान देना और उसके सामने किसी अन्य की तलाश न करना। कई प्रेम को प्रकट करते हैं। वह प्रकट इसलिए करते हैं कि लोगों की प्रशंसा मिल सके। वे लोगों द्वारा की गई महिमा के रसिया हैं। कई प्रेम को इसलिए छिपाते हैं कि वह जब प्रकट होगा तो समाज उसकी अधिक कदर करेगा। इसलिए दोनों स्थितियां एक सी हैं। प्यार हो, उसकी कदर हो, इसकी कीमत का पता चले, इसलिए इसे छिपा कर रखो, सुखी रहोगे। यह सहसा ही प्रकट हो जाए, तो विवशता है। जिन पर लोगों की

वाह ! वाह ! असर नहीं करती, वे नाच कर प्यार करें, जिन्हें निंदा घेरती नहीं जैसा चाहे करें, पर मेरे जैसे का रास्ता छिपाव ही है। मुझे अपने लिए यही उचित लगता है कि मेरा पर्दा हटे नहीं। मेरे प्यार की चिंगारी छोटी सी है–वह हवा के झोंके से बचे। प्रीतम तक मेरी पुकार मेरी जुबान से न जाएं। मैं तो छोटा सा परवाना हूं।

रानी–सांसारिक या परमार्थक?

राव–मन के सुख के लिए, केवल आन्तरिक सुख के लिए।

मेरा छिपाव इसलिए नहीं है कि पहाड़ी राजा प्रीतम के शत्रु हैं और वे मेरे से नाराज़ हो जायेंगे, या यदि मैं खुलकर प्रीतम की तरफ हो गया तो तुर्क पातशाह मुझसे रियासत छीन लेगा। यदि मैं प्रगट कर दूं तो सिख मेरे सहायक हो जायेंगे। यह लाभ है, पर इस लाभ का मोह नहीं। मेरे प्यार का कण छोटा है, वह मुझे कंजूस के धन के समान प्रिय है। इसको कहीं नज़र न लग जाए, कहीं यह मुझसे छिन न जाए, कोई मुझसे छीन न ले। मैं इसे छिपाता हूँ कि यह सलामत रहे। हाँ मेरे प्यार की चिंगारी छोटी है, उसे हवा के झौकों से बचाना चाहिए। बुलबुल अपने प्यार के गीत को गाकर जगत को मोह लेती है पर परवाना छोटा है, गरीब है। चुपचाप शहीद हो जाता है। चकोर प्यार के लिए कूकता है, नाचता है, पर कमल चुपचाप दर्शन करता है, पलक नहीं झपकता। पपीहा पिउ-पिउ की पुकार से पूरे जंगल को संगीत-मय कर देता

है, पर सुरखाब का जोड़ा चुपचाप साथ-साथ रहता है एक को तीर लगे जो दूसरा भी प्राण त्याग देता है। प्रेम के अनेक रंग हैं, पर उसमें कृत्रिमता नहीं होती, यदि प्रेम है तो वह किसी स्थिति में रहे, पर मेरी स्थिति के अनुकूल प्यार का छिपाव ही है।

रानी—मेरी हार्दिक इच्छा थी कि आप दाता जी से प्यार करो, पर मुझे मालूम नहीं था कि आप तो दाता जी के प्यार में रंगे हुए हैं तथा आप नहीं चाहते थे कि किसी और को आपके इस प्यार के बारे में मालूम हो। मुझसे भूल हुई, मैंने दखल दिया और न जानने वाली बात को चोरी छिपे जान लिया। मैं क्षमा प्रार्थी हूं पर मेरी याचना, पश्चाताप या क्षमा की याचना अब पहले की स्थिति को पैदा नहीं कर सकती—आप थे और आपका प्यार था, तीसरे को खबर तक नहीं थी।

राव—चिन्ता मत करो, मैं नाराज नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि बात इसके आगे नहीं जायेगी। बात पति-पत्नी के बीच में है, किसी तीसरे को पता नहीं लगा है—यह भी परमात्मा की इच्छा ही होगी। मेरे अन्दर भी चरण-स्पर्श की बड़ी इच्छा है, वह इच्छा भी अवश्य पूरी होगी। उस शुभ घड़ी की यह पहली चमक है। मैं भी दर्शनों के लिए तड़प रहा हूं, क्या पता उस इच्छा पूर्ति का ही झोंका है। आह मालिक ! आह साहिब !

यह कहते हुए राव ने होंठ भीच लिए, नयन मूंद लिए चेहरे और शरीर में कँप-कँपी आयी, नयनों से अश्रु बहने

लगे, नयन प्रेम मग्न हो गये। रानी इतनी तीखे आकर्षण से अपरिचित थी, उसका अन्तर थर्रराया और नयन भर आये।

6

अजीत सिंह*—यह वन बहुत सुन्दर है।

साहिब श्री गुरू गोविन्द सिंह—इस वन में प्रवेश करते ही ऐसे लग रहा है जैसे लम्बे समय के बाद आदमी घर लौटा हो।

अजीत सिंह—बहुत रमणीक और प्यारा स्थान है।

गुरू जी—क्या यह बिसाली का क्षेत्र है।

शोभा सिंह—पातशाह ! बिसाली की सीमा तो समाप्त हो चुकी है।

गुरू जी—तभी। अच्छा ! राज्य बदल गया है। हम तो कई कोस आ गये हैं।

शोभा सिंह—जी हाँ, अब हम बिभोर के क्षेत्र में हैं।

गुरू जी—हूँ, बिभोर।

अजीत सिंह—शिकार भी अच्छा मिलेगा।

गुरू जी—(मुस्करा कर) बहुत अच्छा।

(इतने में सुन्दर हिरणों का झुण्ड आगे से निकल गया)

अजीत सिंह—हैं ! यहाँ तो शिकार खुद ही निशाने के सामने आ रहा है। आगे दौड़ कर निकल रहा है।

---

* यह अजीत सिंह एक योद्धा है साहिबजादा नहीं।

गुरू जी–कुछ प्यार सुगन्ध का देश है।

शोभा सिंह–राव बहुत चुपचाप रहता है, बहुत कम बोलता है। दो पहर बैठकर स्वयं रियासत का काम करता है। यहाँ दुख कम है, प्रजा सुखी है। एक ही विवाह किया है। रानी गुरू घर में श्रद्धा रखती है, नाहन के राजघराने की पुत्री है, वाणी से उसे प्रेम है, दान भी करती है। राव प्रेमी नहीं, उसे न दान का शोक है न शिकार का। कभी-कभी वैसे ही शिकार को चला आता है। पर अडोल आदमी है।

गुरू जी–अडोल पानी गहरा बहता है, गहरे पानी अडोल बहते हैं।

अजीत सिंह–महाराज ! हम बहुत दूर निकल आये हैं, साथी पीछे रह गये हैं। अब वापस चलना चाहिए।

गुरू जी–सोच तो पीछे लौटने की आती है, पर कदम आगे की ओर बढ़ रहे हैं।

अजीत सिंह–तो यहीं डेरा लगा लेते हैं। आप कमर की पेटी खोल लो। डेरे को यहीं ले आते हैं।

गुरू जी–पर दिल यहाँ भी नहीं ठहरता, आगे ही आगे जाता है।

शोभा सिंह–फिर आगे चले चलते हैं। भीम के राज में हम कभी रूके नहीं, फिर यह रियासत तो भले लोगों की है।

गुरू जी–केवल भले लोगों की या प्यार भी है।

शोभा सिंह–रानी को गुरू घर में श्रद्धा है।

गुरू जी—हाँ, पर इससे अधिक भी कुछ है।

इस तरह बातें करते हुए वे अपने घोड़ों को आगे चलाते गये। इतने में एक और शिकारी दल सामने से आता दिखायी दिया। थोड़ी देर में वह पास आ गया। दल का अगुवा घोड़े से उतर कर आगे आया और माथा टेक कर बोला—'धन्य भाग्य ! आपके चरण इस रियासत में पड़े।'

गुरू जी—(तीर से उसकी पीठ थपथपाकर) इस रियासत में आकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ा सुन्दर स्थान है। आप कुशल तो हैं?

अगुवा—आपकी कृपा है। मैं रियासत का वजीर हूं। हमारे महाराव भले व्यक्ति हैं। मैंने कल ही उनसे पूछा था कि गुरू जी शिकार खेलते हमारी सीमा तक आ जाते हैं—यदि कभी आगे आ जाएँ तो हमने क्या करना है। श्री हुजूर कहने लगे—सारी पृथ्वी परमात्मा और गुरू जी की है, राव—राजा तो प्रबन्धक है, मालिक नहीं। महाराज जी। हमारे राव बहुत गम्भीर हैं, थोड़ा बोलते हैं। सिर्फ इशारा करते हैं। हम उनके दृष्टिकोण को ढूंढ़ लेते हैं। इसलिए उनके इस कथन से सभी नम्बरदारों को हुकुम दे दिया है कि जब भी आप आयें आपको सम्मान दें और जिस वस्तु की आवश्यकता हो जैसे दूध, रसद-पानी आपकी सेवा में हाजिर करें। जो भी आप माँगें प्रस्तुत करें। मैं आज शिकार पर था तो आपके आगमन की सूचना मिली। इसलिए सेवा पूछने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

गुरू जी—मन्त्री जी ! हमें तो ऐसा लग रहा है जैसे अनन्दपुर आ गये हों। आप ऐसे लग रहे हैं जैसे कोई अपना हो, यह अपनी रियासत और अपना घर लग रहा है। आप सुखी रहें, राज्य-भाग्य बना रहे, राव सुखी रहे।

7

रानी—महाराज ! मैंने सुना है श्री जी हमारे राज्य को अपने चरण कमलों से पवित्र कर रहे हैं।

राव—किससे सुना है।

रानी—निक्को से।

राव—यह निक्को भी कहाँ-कहाँ की खबर रखती है। आज दोपहर को ही मेरे पास सरकारी सूचना पहुँची है। इसे पहले ही कैसे मालूम चल गया।

रानी—हाथी के कान रखती है।

राव—फिर भी।

रानी—कोई ग्वालन आई है। पोठेहार से उजड़ कर जो लोग हमारे राज्य में आकर बस गये हैं उनमें से ही कोई एक है। वह अपने गाँव से दूध की मटकी लेकर नगर को आ रही थी। वन में सतिगुरू को देखकर खड़ी हो गयी और बोली—'थोड़ा-सा दूध पी लो।' सतिगुरू जी ने कहा—'क्यों?' तो बोली—'पता नहीं। पर आपको देखकर चाव आ रहा है।' आप बोले—'क्यों?' बोली—'मुझे पता नहीं, कलेजा धड़कता है, आँखें फड़कती हैं, उमंग उठती है, आप दूध पी लें।' महाराज बोले—'हम कौन हैं?' कहने

लगी–'मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं। पर देखकर चाव आ रहा है। सतिगुरू ने कहा–'कीमत लोगी।' कहने लगी–'दूध बेचा तो पुत्र बेचा, पुत्र बेचा तो फिर क्या रहा।' आपने उसकी तरफ देखकर कहा–'बिना कीमत कैसे पी लें।' बोली–'हम कंगाल हैं, आपको देखकर मन शान्त हुआ, और क्या कीमत चाहिए।' आप बोले–'ऐसे नहीं पियेंगे।' यह सुनकर वह रो पड़ी, नयन मिट गये, रंग बदल गया। फिर नयन खोले, रोते हुए बोली–'न जाने कितने युगों से दूध लिये पीछे पीछे घूम रही हूँ, फिर हमसे क्यों नहीं पीते।' ऐसे कहती वह बावली-सी हो गयी, फिर बोली–'क्या कीमत लूँ। पैसे लूँगी–वे एक दो दिन में खत्म हो जायेंगे। आप कीमत देकर पियेंगे? पियो, आप पी लो, कीमत दे देना, पर जितने बड़े हो, उतना बड़ा ही मूल्य देना...पैसे तो खत्म हो जायेंगे। आपको बेचूंगी तो आप जितना मूल्य पाऊँगी। हाय राम ! राम या कृष्ण, कृष्ण या परमात्मा, परमात्मा है कि वह, वह है कि मैं, मैं हूँ कि दूध, दूध है कि पैसे, पैसे हैं या दर्शन, दर्शन हैं या आप, आप हैं या मैं हूँ। (और बावरे पन में) यह जा रहा है दूध श्रीर समुद्र को, खुद ही मथना, खुद ही पीना, हम तो जा रहे हैं आपके देश।' वह इस तरह के अर्थहीन वाक्य कह रही थी कि कलगीधर के चेहरे का रंग बदला, भवों में बल पड़ गया, होंठ दांतों से दब गया, नयन मुंद गये, पल भर बाद उसके सिर से खुद मटकी उतारी, मुंह लगाकर

दूध पीने लगे। जैसे-जैसे दूध पिया वह होश में आ गयी। कहने लगी–मैं ! मैं कहाँ थी? वाहिगुरू यह क्या हुआ। वाहिगुरू का देश कौन-सा है। उस देश का राव कौन है? मुझे उस देश में कौन ले गया था? देश के राजा ने मेरी मटकी ले ली, सारा दूध पी गया। इतना सुन्दर और बली राजा कौन था, मुझे फिर यहाँ क्यों छोड़ गया? हैं ! यह मेरे अन्तर कैसी ध्वनि उत्पन्न हो रही है। रोम-रोम वाहिगुरू कह रहे हैं। मैं फूल की तरह हल्की कैसे हो गयी? मेरा वजन कहाँ गया? कैसा स्वाद आ रहा है। अच्छा... ...हाँ......यह तो दूध का मूल्य है। वाहिगुरू का देश था वह। उसके देश में यही सिक्का चलता होगा, अच्छा है मूल्य ले लिया, मैं मूर्ख कह रही थी ऐसे ही पी लो और वे कहते थे मूल्य ले लो। मुझे क्या पता मूल्य पैसा नहीं, मूल स्व है, स्व है। मैंने गौरस (दूध) दिया और राम रस पाया। लोगो देखो, व्यापारी आया है, सौदा कर लो। दूध दो और मूल्य में राम रस लो।

राव जी ! इस तरह आश्चर्यजनक दशा में वह ग्वालन नगर में आयी। निक्को उसे जानती थी। वह उसे घर ले आयी, प्यार किया, बैठाया। जो कुछ उसने सुना मुझे बताया। वह ग्वालन अब पूरी तरह से होश में आ गयी है। उसने सारी कथा खुद की सुनाई है। एक सहेली उसके साथ है, शेष कथा उसने सुनायी है। वह कहती है कि वे साहिब श्री गुरू गोविन्द सिंह जी हैं। वह आनन्दपुर भी रही है, पर दूध पिलाने वाली को अभी तक पता नहीं है कि

वे कौन हैं? पूरी होश आने पर ही पता चला है कि उसने कलगीधर जी को दूध दिया है और कीमत में वाहिगुरू का नाम ले आयी है।

राव ने वार्ता सुनी। रानी उनका चेहरा देख रही थी। बात करते समय कितनी बार रानी रोयी, उसके रोम खड़े हो गये, पर राव का चेहरा एक जैसा ही रहा, उस पर कोई भाव नज़र नहीं आया। एक दो बार होंठ दांतों के नीचे आया या एक दो बार अनोखे ढंग से उसने पलकें झपकीं, पर मालूम नहीं चलने दिया।

रानी से अब रहा नहीं गया। वह बोली—अब तो मुझे मालूम है कि आपको गुरू जी से प्रेम है, इतनी खुशी, इतनी शक्ति और प्यार की बात सुनकर भी आपके दिल को प्यार और आकर्षण अनुभव नहीं हो रहा।

राव—अन्दर की दुनिया के कौतुक अन्दर ही होते हैं।

रानी—कोई तीसरा नहीं बैठा है, पत्नी बैठी है। दिल को खुला छोड़ देते तो आन्तरिक रसों का भाव बाहर भी आ जाता।

राव—कोई बुलबुल है, कोई परवाना। परवाना बुलबुल की तरह कैसे उड़े?

रानी—मेरी दृष्टि में आपने अपने मन को बन्द करके रखा हुआ है।

राव—भूतों को बन्द रखना जरूरी है। खुल दी तो वे फिर सवार हो जायेंगे।

रानी—भूत क्यों? यह तो प्रेम-कण हैं, उन्हें चमकने दो।

राव—यदि अन्तर में प्रेम-कण हैं तो उन्हें बचाकर रखो। बोलने से चमक कम होती है, हाव-भाव प्रकट करने से दमक टूट जाती है, अन्तर प्यार के साथ घुल-घुल चले, पर नयनों को माथे को, कपोलों को होठों को रोमावली की खबर न हो। सुना नहीं तुमने दांये हाथ से दान करो पर बांये को मालूम न चले। इसी तरह दिल प्यार करे तो, रोमांच पिछली तरफ, बाहर की तरफ, इन्द्रियों की तरफ क्यों जाएं?

रानी—हाय ! इतना अधिकार। पर क्या आपका मन दर्शनों के लिए नहीं करता।

राव—समझ लो ! तुम तो पत्नी हो.........अब बस करो।

रानी—अनादर के लिए क्षमा। यदि मन मेरे मन की तरह तड़प रहा है, तो दर्शनों की इच्छा कैसे पूरी होगी? चुप बैठने से क्या होगा?

राव—यह शरीर, मन, आत्मा, जन्म, राज्य-भोग, प्रियवर आप, सभी बिन बोले ही मिले हैं। दाता गूंगों की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है।

रानी—(रोते हुए) चलो बिसाली चलकर दर्शन करें।

राव—कभी वृक्ष, पौधे, लताएं माली के पास चलकर जाते हैं? माली खुद एक-एक पौधे के पास जाकर पानी

देता है, उनको पालता है। रानी ! पौधे कभी माली के पीछे नहीं दौड़ते।

रानी–तो क्या कोई सिख, जिज्ञासु, परमात्मा को तलाश करने वाला, फकीरों, संतों तथा अवतारों के पास नहीं जाए।

राव–जायें, जरूर जायें, पर कभी भूले-भटके तथा अज्ञानी भी तो जाते हैं? उन्हें जाना नहीं आता। वैसे दीन-दुखी नहीं जाते। पौधे माली के घर जाने से इसलिए नहीं कतराते कि उन्हें उससे प्यार नहीं है। हो सकता है कि उनके पैर होते तो वे भाग कर जाते। मुझमें वह वस्तु नहीं है जो चलाकर ले जाती है।

रानी–फिर उन्हें आमंत्रित करते हैं। बिसाली वाले ने भी तो उन्हें आमंत्रित ही किया है। वे दीनदयाल हैं, जरूर आयेंगे।

राव–बिसाली वाले का स्नेह दृढ़ होगा या समय की आवश्यकता ऐसी होगी कि उन्हें आमंत्रित करने में ही उसने अपनी सेवा समझी होगी। पर मेरे लिए इस तरह उन्हें आमंत्रित करना उनका अनादर है।

रानी–तो वे सभी लोग जो अपने बड़ों को आमंत्रित करते हैं, उनका अनादर करते हैं।

राव–नहीं प्रिय ! यह बात नहीं। पौधों के पास जिह्वा भी नहीं होती कि वे माली को आमंत्रित करें।

'मैं आमंत्रित करूं', मैं आमंत्रित करूं' यह कहते हुए राव की आंखों से आंसू गिरने लगे। पर उसने नयन बंद कर लिये। आंसू आँखों ने ही पी लिए।

रानी–फिर हमारी इच्छा कैसे पूरी होगी?

राव–माली पौधों की चुप आवाज को समझता है, वे चल नहीं सकते इसका उसे ज्ञान है। पौधों की आवश्यकता को वह पौधों से अधिक जानता है।

रानी–यदि कोई माली को खबर कर दे तो?

राव–यह माली माला फेरने वाला नहीं है, वह दिलों पर कृपा करने वाला, दिल को पिरोने वाला, सभी का मालिक है। प्रारब्ध से आया अन्तर्यामी है।

रानी–आप हिम्मत वाले हैं, पर यदि सारा संसार इसी रास्ते पर चले तो माली का काम कितना बड़ जायेगा।

राव–माली की उंगली सारे जगत को गोवर्धन की तरह उठा लेती है। वह भार को हरने के लिए आया है।..... ...सारा जगत मेरे रास्ते पर क्यों चलेगा? मैं इसलिए तो चुप हूं कि जिस रास्ते मैं चल रहा हूं, उस पर कोई न चले।

रानी–सभी सिख, संगत, जरूरतमंद, प्रेमी नित्य दर्शनों के लिए आते हैं।

राव–प्रत्येक अपने स्वभाव का दास है। परमात्मा ने उन्हें अपने स्वभाव के अनुसार चलने की शक्ति दी है। मैं जिस तरह से ढल गया हूं और मेरा स्वभाव के जिस तरह

का बन गया मुझे उसी के अनुकूल चलना है। जगत को, जो जाता है भाग्य वाला समझता है। यह मेरा स्वभाव है कि मैं नहीं चाहता कि कोई मेरी नकल करे। पर मैं जो कुछ हूं उससे भिन्न नहीं हो सकता। प्रियवर ! कितना अच्छा होता है कि आपकी जिज्ञासा मेरा पर्दा उठाने तक न ले जाती। मनुष्य को बहुत कुछ जानने की आवश्यकता है, पर कुछ ऐसा भी होता है जिसे न जानना अच्छा होता है। आपने मेरा न जानने योग्य भेद जानकर खुद को चिंता में डाल लिया है। मैं जो कुछ बता रहा हूं, बताकर खुश नहीं, और बताने पर आपको तसल्ली भी नहीं हो रहीं और मुझे बताना इसलिए पड़ रहा है क्योंकि आप भेद जान गयीं हैं। आपकी और मेरी पीड़ा एक है, दु:ख-सुख समान हैं, प्यार का सम्बन्ध है, अब कैसे न बताऊँ? यदि आपको भेद मालूम नहीं होता हो आपको पूछने की और मुझे आपकी तसल्ली न करा सकने वाले उत्तर देने की आवश्यकता न पड़ती।

प्रियवर–आज पहली बार आपने मुझे कहा है कि इस दासी के साथ आपका प्यार का सम्बन्ध है। नहीं तो, आज तक आपका मुंह बंद रहा, पर व्यवहार में आपका प्यार अति का है। मुझसे भूल हुई, पर प्यार की लहर में। आपने कृपा की, मेरे अवगुण नहीं देखे, बल्कि अपने विचारों से अवगत कराया। जो आप कहते हैं ठीक है, पर मैं समझ नहीं सकी कि आप प्यार छिपाते क्यों हैं?

राव—मैं छिपाता नहीं। अंधेरे में रहने वाली चीजें अन्धेरे में ही ठीक रहती हैं। यह मेरा स्वभाव है। जड़ें अन्धकार में और वृक्ष प्रकाश में शोभा देते हैं।

प्रियवर—इतने सालों के बाद मुझे समझ आयी है कि बाहर से रूखे और खुरदरे लगने वाले के अन्दर अति प्यार वाला और कोमल दरिया दिल है। आप जैसे-जैसे प्यार करते हैं, बाहर से खुरदरे लगते हैं। आपका रूखापन अन्दर से पसीजने का चिह्न होता है। पर जगत में इस बात को कौन समझ सकता है जिससे आपका कोई मित्र बनें? यदि कोई बने भी तो वह कैसे रहे?

राव—यह मेरा दुर्भाग्य है। मुझे मित्रों की कमी की ही दात मिली हुई है। ऐसा ही सही—एक में अनेक को प्यार करने की शक्ति होती है। यह तो अपनी शक्ति है, कोई बात अच्छी या बुरी नहीं। जैसी अन्तर की अवस्था होती है, व्यक्ति वैसा ही करता है। मेरे दिल से जबान तक का रास्ता बहुत तंग है। उस गली से जब प्यार गुजरता है तो फंस-फंस जाता है, मेरे साथ यही कठिनाई है। मैं किसी शोखी में नहीं हूं।

प्रियवर—अच्छा सरताज जी ! जगत से तो जैसा व्यवहार किया वह तो चार दिन की बात है, पर जहां दिल दिया, वहां न जाना, आमंत्रित न करना, न पत्र लिखना, न संदेशा देना, न सूचना। मेरा दिल छोटा है, विचलित होता है।

राव–जो आपने मेरा भेद जान लिया है–समझो नहीं जाना है। तुम्हारी चिंताएं स्वतः दूर हो जायेंगी या मुझे मेरे स्वभाव पर छोड़ दो, जो हो रहा है देखती चलो। तब आपकी चिंता कम हो जायेगी।

रानी–मेरी चिंता आपके प्रेम रस को पाने की है। कहती हूं–अब तो नारायण घर आ गये हैं। गंगा हिमालय छोड़ कर हमारे पास हमारे घर आ गये हैं–अब तो डुबकी लगा लें। आपको कृतार्थ हुआ देख मुझे भी शीतलता मिले।

राव–आप बिसाली चले जाओ, यहां बुला लाओ, जैसी कामना हो वैसा करो–मेरी तरफ से कोई रोक नहीं। पर मुझसे वह नहीं कराओ जो मेरे अन्तर में नहीं है। चलकर जाने की उमंग नहीं, आमंत्रित करने की हैसियत नहीं, प्रेम-कण मेरे अन्दर है, पर छोटा-सा, वह भी प्रभु की कृपा से हैं, मेरा नहीं। मैंने तो उसे कंजूस के धन के समान सम्भाल कर रखना है कि कहीं फिसल न जाए।

रानी–यदि वे अनन्दपुर चले गये तो?

राव–यदि मैं आज मर जाऊं तो?

रानी–(रोते हुए) बस करो, मुझसे भूल हुई (हाथ जोड़कर) इस तरह अशुभ मुंह से न निकालो।

राव–अच्छा मैं आपकी तरफ से पूछता हूं–'फिर क्या होगा'? और मैं खुद ही उत्तर देता हूं–

'जे घटु जाए त भाउ ना जासी।।'

प्रेम-कण अन्तर से न जाए मुझ कंजूस का धन यही है, जिसके साथ यह प्रेम-कण हैं वह अन्तर्यामी है, लोक-परलोक का स्वामी है, वह हृदय में बैठा सभी कुछ जानता है। जो वह करता है, वही उचित है।

रानी-आप एक राजनीति की बात भी सुन लो। आप गुरूजी के विरूद्ध कभी जंग में शरीक नहीं हुए, इसलिए राजा आपसे नाराज हैं। वे सभी चालक है, अब आप कष्ट में होंगे तो वे भी कसर नहीं छोड़ेंगे। इधर सिखों से स्नेह नहीं, आड़े समय में इधर से सहायता नहीं मिलेगी। क्या यह अच्छा नहीं कि इधर आपका प्रेम प्रकट हो और एक आश्रय पक्का हो जाए।

राव-अब आप किसी और बात के करीब आ गयी हैं। राजनीति और प्यार दो बातें इकट्ठा नहीं हो सकती। यदि इसी भाव से उनसे मिलूं तो उसमें प्यार नहीं, यदि अन्दर हो भी तो मेरा मन कहेगा कि यह भुलावा है। यह तो प्रेम को भुलावा में डालने वाली बात हुई। न मिलने से प्रेम-कण निर्मल नज़र आता है मिलने से उस पर नीति का अन्धकार पड़ता है। हाय ! मेरा छोटा सा प्रेम-कण निर्मल रहे? वह निर्मल तभी रह सकता है जब मैं अपनी चाल से चलूं। बाकी रहा राज्य-भाग्य, मैंने कोई तलवार नहीं चलायी, अपने आप मिला, जायेगा तो तलवार चलाऊंगा। तलवार चलाने से रह गया तो ठीक चला गया तो ठीक। न छोड़ना है, न देना है, जाने लगे तो न जाए सोचकर

पूरा जोर लगाना है, जोर लगाने पर भी चला जाए तो दुख प्रकट नहीं करना। हाँ यह देखना है कि हृदय में जो प्रेम-कण है कहीं वह न चला जाए।

रानी—अब बस करो ! मैंने आज अपने सरताज को बहुत कष्ट दिया है, आप अच्छे हैं, दानी हैं और अपने सिद्धान्त पर टिके हुए हैं। मैं चिंतित हूं, प्रतीक्षा की हिम्मत नहीं रखती। आप उसी मार्ग पर चलें, जो आपको उचित लगता है। प्रेम का तार न टूटे, प्रेम-कण छिने नहीं, प्यार मिटे नहीं, प्रेम की ज्योति बुझे नहीं। वही करो जिससे वह सलामत रहे। मुझे क्षमा करो कि मैं आपका भेद जान गयी और आपका ध्यान इतना इस विवाद में लिया।

राव—यह भी प्रारब्ध के आदेश से ही हुआ है, मैंने ऐसा ही समझा है, आप भी ऐसा ही समझें। अब कुछ मत सोचो। जो मार्ग मुझे दाता ने दिखाया है, मुझे उसी पर चलने दो।

8

वजीर—(राव के निजी दीवान खाने में) महाराज ! राजेश्वर जी। उस दिन श्री गुरू गोबिंद सिंह के अचानक दर्शन हो जाने और मैंने जो किया वह आपको पहले बता चुका हूं। उससे पहले भी और बाद में भी मैंने रियासत में यह आज्ञा भिजवा दी थी कि उनका सम्मान हो तथा उन्हें जिस चीज की आवश्यकता हो पंच प्रस्तुत करें। सूचनाएँ आ रही है कि वे कभी-कभी शिकार खेलने

इधर निकल आते हैं और कहते हैं—यहाँ तो अनन्दपुर की हवा बह रही है। ऐसा लगता है कि उनका मन यहां रहने को कर रहा है। यह नीति है और धर्म भी कि हम आदर से आमंत्रित करें और उनकी सेवा करें? आपकी क्या इच्छा है।

राव—अनन्दपुर की हवा बहने लगती है। अर्थात् उनको यह स्थान अपना घर लगता है। परमात्मा और गुरू मालिक जो हैं। उन्हें अपना घर लगता है। सभी घर परमात्मा के जो हैं।

वजीर—आमन्त्रित कर लें?

राव—पवन किसी के आमन्त्रण की प्रतीक्षा करती है? वर्षा क्या किसी के बुलाने पर आती है?

वजीर—सत्य है। पर मैं मंत्री हूं। जो बात राज्य के भले के लिये है वह कहना मेरा धर्म है। मालिक की आज्ञा में चलना भी मेरा धर्म है। उनको आमन्त्रित करने के लिए जैसी आपकी आज्ञा हो।

राव चुप हो गया, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मंत्री राव के स्वभाव को जानता था। कुछ अन्य राजसी काम करके कुछ समय के बाद वह चला गया। मंत्री का स्वभाव था कि अपने घर एकान्त में बैठ कर राव की अस्पष्ट बातों पर सोचता और उत्तर तथा अर्थ खोजता। अब घर जाकर वह आज के वाक्यों पर सोचने लगा क्या पवन किसी के आमन्त्रण की प्रतीक्षा करती है? क्या वर्षा किसी के बुलाने

से आती है? पवन अपने आप आती है अर्थात् वे खुद आयेंगे। बुलाने पर वर्षा नहीं होती अर्थात् बुलाना उचित नहीं, वे बहुत बड़े हैं, इच्छा होगी तो खुद आयेंगे। आयेंगे ता उनका स्वागत है। यह अर्थ निकाल कर मंत्री ने इससे अधिक कुछ नहीं किया। यदि वे स्वंय रियसत में आये तो उनका सम्मान हो। पर बाद में उसने सोचा कि मैं मंत्री हूं, मुझे मालिक का भला सोचना चाहिए और भला इसी में है कि गुरू जी आयें, हम उनका आदर-सत्कार करें जिससे पहाड़ी राजा समझे कि इनके पीछे भी कोई है। यदि कहीं संकट में फँस गये तो सहायता किससे लेंगे। राजा के स्वभाव का पता नहीं चलता। वैसे तो भला है, किसी का बुरा नहीं चाहता, पर कुछ रूखा और खुरदरा है, पर गुस्से वाला नहीं है, अकेला रहना ही पसन्द करता है, पर चतुर, बुद्धिमान और नेकी करने वाला है। चुप रहता है, कम बोलता है, पर जो बोलता है तोल कर, सही और निशाने पर, वह फिर झूठ नहीं होता, हां, वह नीति के विरूद्ध होता है। किसी से उसे प्यार है, ऐसा नहीं लगता, पर उसे किसी से द्वेष नहीं। रानी बड़ी अच्छी है पर दासियाँ बताती हैं उससे विशेष प्यार नहीं, फिर यह भी आश्चर्य की बात है कि दूसरा विवाह नहीं किया, किसी दासी की तरफ भी नहीं देखता, किसी पर बुरी नज़र नहीं डालता। ठाकुर या शिव के द्वार भी नहीं जाता। घर में कोई मूर्ति भी नहीं है, कथा भी नहीं सुनता, मद-पान भी नहीं करता। तीर्थो पर भी

नहीं गया, किसी गुरू को धारण भी नहीं किया, पर इन सबसे खाली भी नहीं लगता। हिंदु-मुसलमान, फकीर मौलवी कोई भी आये तो सम्मान करता है, पर ऐसे कि किसी को मालूम न चले। साधु संत, फकीर आये तो उनकी बात भी सुन लेता है, पर भींगता किसी से नहीं। मेरे साथ भी खुलता नहीं, पर मुझे उन्नति दी है, मेरे बच्चे के विवाह का सारा खर्चा दिया। यदि कहें रूखा है, तो ऐसा नहीं यदि कहें प्यार वाला है तो उसकी थाह नहीं। एक बात पक्की है कि भला है और समझ वाला है। पर अकेला और एकान्त पसन्द करता है। उसे क्या पसन्द है, वह किससे खुलता है? इसका पता नहीं। परमात्मा ऐसे स्वभाव वाले की रचना भी कभी-कभी करता है। वाह-वाह ! मेरे स्वामी ! मैं सौभाग्यशाली हूं। मैं सदा उसके पानी की जगह खून बहाऊंगा :

9

एक दिन राजा जी कुछ अस्वस्थ थे। एक मंत्री ने वैद्य के सामने विनय की कि यदि आप शिकार के लिए चलें तो कुछ मन-बहलाव हो जायेगा। वैद्यजी ने कहा कि बीमारी तो कोई खास नहीं ऐसे ही सर्दी सी लगी है। कई दिन काम ज्यादा होने से आप हिले-जुले भी नहीं। वैद्य ने कहा विचार उत्तम है। राजा जी ने कहा-वैद्य जी ! सत्य वचन।

दूसरे दिन राव और मंत्री शिकार के लिए चल पड़े। दो-चार दिन में ही शिकार का आनन्द मिलने लगा। राव

जी की तबियत अच्छी हो गई। एक दो बार उसके कानों में आवाज पड़ी कि गुरू जी भी शिकार पर आये हुए हैं, पर वन में आमने-सामने मिलन नहीं हुआ।

एक दिन राव शिकार से वापस घर आ गया। प्रियवर के कमरे की तरफ गया तो अन्दर से मन्द-मन्द आवाज सुनायी दी। राव अब दबे पांव चला। धीरे से पर्दा उठाकर अन्दर गया तो देखा-रानी अरदास कर रही थी। अरदास की ही आवाज आ रही थी। अर्थ समझ आ रहे थे। अब दबे पांव राव पीछे हटा-वह नहीं चाहता था कि कहीं आहट से रानी का ध्यान हट जाए-या रानी यह समझ कर लज्जित हो कि उसकी अरदास को मैंने सुन लिया है। अच्छा है कि पुजारी अपने पूज्य से मिलन में अकेला हो। जैसे ही उसने दहलीज से बाहर पांव रखा रानी की आवाज उसके कानों में पड़ी। उन प्रेम-पूर्ण शब्दों का प्रभाव राव पर पड़ा। वह रो रो कर प्रार्थना कर रही थी–वह एकाग्र चित्त खड़ी थी। आवाज में सच्चा प्यार और विनय थी। उस कोमलता का राव के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह सभी कुछ भूल गया। जैसे वाद्य यंत्र दूसरे बज रहे वाद्य यंत्र की कम्पन को अनुभव करता है वैसे ही तार में पिरोया हुआ, पर्दे के पीछे छिपा हुआ राव का मन अरदास के भाव से पिघल गया और उसी रंग में बहने लगा।

दहलीज के बाहर अपने सिर को टिका कर राव खड़ा हो गया, स्वयं को भूल गया और अरदास में लीन हो गया।

रानी कह रही थी–हे परमेश्वर जी। मेरे पति पर कृपा करो, कितने अच्छे और श्रेष्ठ है, कितने प्यार वाले हैं, उन्हें दर्शन दो। वे स्वस्थ है, उनका मन एकाग्र है, वे भरे हुए घड़े हैं, पर बोलते नहीं। मैं दीन हूं, शून्य हूं, बोलती हूं, घबराती हूं, प्रार्थना करती हूं, हे दाता जी। कृपा करो। दाता जी को हमारी कुटिया में भेजो। हमें दर्शन कराओ। न मुझे और न मेरे पति को नाम-दान मिला है। जिसे नाम निवास कहते हैं अभी हम उससे रहित हैं।

बनु बनु फिरत उदास बूंद जल कारणे।।
हरिहां तिउ हरि जनु मांगै नामु नानक बलिहारणै।।

पति जी तो अपकी इच्छा में अटल खड़े हैं। मैंने पपीहे की पिउ-पिउ की तरह आपके आराम में बाधा डाली है। हे मेरे परमात्मा जी ! बोलना अनादर है, पर मैं पंछी हूं, बोले बिना नहीं रह सकती। हे दाता। सुनो और पसीजों शाह ! सात सुरों के ज्ञाता और 84 रागों के विद्वान भी पंछी के एक सुर, दो सुर या तीन सुर वाले राग को सुनकर पसीज जाते हैं। आप संगीत रूप हैं, संगीत के संगीत हैं, मेरे इस पक्षी आलाप पर रीझ जाओ, प्यार करो। दाता जी ! आप रियासत में आते हो, पक्षियों-मृगों का श्किार करके चले जाते हो, कृपा करो, हम दोनों का शिकार भी करो। कोई बाण चलाओ जो हमारे कलेजे में उतर जाए कोई नयनों से बाण चलाओ जो हमारी आंखों से कलेजे में छिपे दिल को चीर जाए हमारे इस मनुष्य रूपी जीवन

को बचा लो, हमें नाम दो, लिव दो, नाम का 'नाम महारस' दो, रस दो, रस लीन करो। कृपा करो, हे सतिगुरू दाता दर्शन दो ! कृपा करो। दाता जी। कल्गियों वाले स्वामी जी कृपा करो। नयन तरस रहे हैं, दिल दर्शनों का इच्छुक है, इच्छा पूर्ण करो।

रानी ने घड़ी सवा घड़ी इस तरह से भावना पूर्ण अरदास की। रानी का दुपट्टा नयन-नीर से भीग गया था। राव दीवार से सिर टिकाये भाव में लीन खड़ा था। रूखा और खुरदरा दीखने वाला राव, इतना रसिक और संवेदन शील था, उसका चित्त इतना कोमल था कि अरदास की कोमलता में ही खो गया। वह खड़ा का खड़ा रह गया। वह दीवार से सटा एक मूर्ति सदृश्य लग रहा था। अरदास के बाद रानी ने खुद को सम्भाला, शरीर निर्बल पर फूल की तरह हल्का था। मुख पोंछकर धीरे से बाहर की तरफ चल पड़ी। दहलीज पार करते ही प्राण-प्यारे की अचल मूर्ति देखी। राव को देखकर उसने मन ही मन कहा-प्यारे सरताज ! तेरी कोमलता और लीनता धन्य है। मैंने अरदास पूरी भी कर दी, पर सुनने वाला अभी तक रसलीन है। धन्य है ! धन्य है !! इस तरह सोचकर दहलीज के दूसरी तरफ रानी हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। कुछ संशय हआ कि राव जी कहीं क्रोधित न हों कि तुमने दर्शनों के लिए अरदास क्यों की? यह भी अनादर है, पर अच्छा अपना-अपना विचार है।

इतने में राव जी ने सिर उठाया-नयन खोले, कानों ने बताया कि आवाज बंद है, नयनों ने बताया कि आवाज करने वाली सामने खड़ी है। राव जी ने धीरे से कहा–तेरी अरदास बहुत मधुर और दिल को आकर्षिक करने वाली थी। उसने मुझे इतना मोह लिया कि मैं यह ही भूल गया कि आपके एकान्त और एकान्त की अरदास का भागीदार बन गया। मुझ से यह अवज्ञा हो गयी। आप नाराज तो नहीं?

रानी–नहीं जी ! आप बताओ, आपके संकल्प अनुसार मेरी अरदास अनादर तो नहीं।

राव–नहीं प्रियवर ! राजा के दर बाजे बजते हें, संकीर्तन होता है, ढोल वाला ढोल, तूती वाला तूती, बीन वाला बीन, ढपली वाला ढपली बजाता है। राजा ने जो वाद्य यंत्र जिसे दिये है उसने ही बजाना है। राजा को वही स्वीकार है।

10

ठाह ! ओह गोली चली। काले रंग का ढील-डौल वाला हीरा मृग मारा गया। किस की गोली लगी? वजीर की। सारा जत्था दौड़-कर वहां पहुंच गया। राजा ने पहले हँस कर देखा, पर फिर देखकर बोला–आह ! कैसा सरदार मृग है? वजीर ! आपने मृग मारा, खुशी मनाई, हमने निशाना बाजी के लिए आपको बधाई दी, पर इसके झुंड का क्या हाल होगा? अब प्राण त्याग रहा है। कैसा छैला बांका खड़ा था। अब तड़पने की शक्ति भी नहीं रही। वाह

! मृग राजा ! आराम करो। देह का परिणाम यही है। कारण चाहे कोई भी हो। देखो मंत्री जी ! बाकी का झुण्ड कितनी दूर निकल गया है। झुण्ड दौड़ गया है। सांई ! संकट में कौन साथ देता है? कोई-कोई मादा मृग पीछे देखती है, शक्ति नहीं पर प्यार है, प्यार की चिंगारी बनी रहे।

बेज़बान पशु ! जीवन कितना कीमती है, पर कितना सस्ता चला जाता है। कुदरत ने यह सुन्दर शरीर कितने समय में बनाया था, पर तोड़ते हुए कुछ क्षण ही लगे। जीवन की कितनी बहुलता है, पर छोटे-से-छोटे प्राण भी जाना नहीं चाहते। यदि जाते हैं तो कितनों को अपनी हाय लगा जाते हैं। (मृग की तरफ देख कर) तड़पता है। पीड़ा, हाय पीड़ा। इससे सभी भागते हैं, पर इससे कोई नहीं बचता? हर बात पर पीड़ा, फिर एक पीड़ा दूसरी पीड़ा का इलाज है, पीड़ा से भागना और पीड़ा के ही यत्न करना। पीड़ा, पीड़ा को सहना, पीड़ा पीड़ा को हटाना पीड़ा हो तो होश आती है, बेहोश को पीड़ा से मुक्ति। होश और पीड़ा का विवाह। पीड़ा गुरू है, पीड़ा उस्ताद है, पीड़ा ही सही मार्ग पर डालती है। यदि कोई स्वयं ही सही मार्ग पर चले तो पीड़ा क्यों आये? अविद्या सही रास्ते पर नहीं जाने देती। पीड़ा हो तो ज्ञान आता है कि इधर पीड़ा है। इसकी उलटी तरफ पीड़ा नहीं है आराम है इसी पीड़ा के लिए ज्ञान की सीढ़ी है।

राव कांप उठा, राव आज बोल पड़ा, मंत्रियों और शिकारियों ने राव का सम्वाद सुन लिया।

राव से ऐसी गलती पहले कभी नहीं हुई थी—फिर आज क्यों हुई? यह रानी के सामीप्य का दोष है? पता नहीं, पर वजीर का रंग कुछ फीका लग रहा था। सोचने लगा राव का चित्त तो दुखी है, वे तो अफसोस प्रकट कर रहे हैं। मरते हुए मृग को देख कर द्रवित हो गये हैं। इतना पहले तो कभी नहीं बोले। आज़ इसी लिए बोल रहे हैं क्योंकि उनके मन को आघात लगा है। राव को शिकार पर लाना ठीक नहीं।

राव की जबान फिर बेवश हो गयी—'यदि ऐसे मुझे तीर या गोली लगे और मारने वाला हंसे, मैं मरू और प्रजा रोये और साथी सभी दौड़ जायें। हां, जिंदगी क्या है? शिकार करते समय यदि शेर सामने आ जाये तो.......तो मौत क्या मैल लेनी है। मौत ! मौत ! हां मौत का भय क्यों ! जो वस्तु अटल है, एक दिन जिसने आना ही है, चाहे किसी बहाने आये, उसका भय क्यों? जो कुछ हो रहा है सो हो रहा है। (धीरे से जिससे और सुन न सके) पर ये विचार साधुओं के हैं, मैं राजा हूं। मुझे शिकार करना है, युद्ध लड़ने हैं, कहीं पर भी कांपना नहीं है। पर राजा और साधु आदमी हैं और आदमी में दया होती है।

अब सचमुच में एक तीर आया और सर्र करता पास से निकल गया और तड़प रहे मृग को लगा। इतने में

नम्बरदार आ गया बोला–मंत्री जी ! कलगीधर महाराज शिकार पर आये हुए हैं। यह तीर जो मृग को लगा है उन्हीं का है। जाकर देखो इसमें दो-ढाई रत्ती सोना होगा यह उनके तीर की पहचान है। आओ, पास ही हैं। आपका हुकुम था कि पता देना।

मंत्री (राव को)–आज्ञा हो तो मैं दर्शन कर आऊं?

राव–हर दिल का रब से सीधा सम्बन्ध होता है, मैं रोकने वाला कौन हूं?

मंत्री–आप भी चलते या मैं याचना करके उन्हें यहां ले आऊं? अब इतना पास होकर भी न मिलना उचित नहीं।

राव–(मुस्करा कर) राव कैसे जाए? ब्रह्मरूप आप किस तरह आये? हैं? क्यों? यही नीति है?

मंत्री–आप विद्वान हैं, चलना नीति भी है और श्रेष्ठ आचार भी। आगे आपके विचार ऊंचे हैं।

राव–दीन, बीमार वैद्य के पास पहुंच नहीं सकते।

मंत्री–मेरा जाना तो फिर......जैसी आज्ञा।

राव–जिस तरह आत्मा का प्रकाश, बुद्धि की रोशनी, समझ का उजाला तीन दीपक है। जो जिसे प्राप्त है उसके लिए वही श्रेष्ठ है।

मंत्री (सोचकर)–अनादर माफ। फिर मैं जाता हूं।

राव–हां मंत्री ! यही योग्य है। योग्य अयोग्य राज्य में और योग संयोग परमार्थ में। अन्तर में वियोग के आने से योग की भूख लगती है। यह भूख लगने से ही संयोग प्राप्त होता है। योग्य-अयोग्य, योग-संयोग अलग विचार के हैं।

मंत्री, राव की बात को समझ नहीं पाया, सिर झुका कर चला गया। श्री गुरू जी के पास जाकर माथा टेका। श्री गुरू जी बड़े प्यार से मिले और बोले—मंत्री ! आपके राज्य में बहुत प्यार है। बाहर से लोग खुरदरे, रूखे नज़र जाते हैं, पर जब कोई काम करते हैं तो बड़े नरम और कोमल भाव से करते हैं।

मंत्री—आप जी की कृपा है। लोगों पर राव जी का प्रभाव है।

गुरू जी—कुछ आपकी तरफ से प्रजा को आज्ञा भी है।

मंत्री—यथा राजा तथा प्रजा। मंत्री का धर्म तो राजा का सही हुकुम बजाना है राजा की इच्छा ही प्रजा को अमल में लाती है। मैं तो बांस का टुकड़ा, सुन्दर गले की सुर वायुमंडल को देने का सेवक हूं।

गुरू जी—शाबाश मंत्री ! आज अभी तक हमें शिकार नहीं मिला, पहले तो आगे-पीछे शिकार ही शिकार घूमते थे। आज शयद सारे वन्य पशु भाग गये हैं।

मंत्री—आज आपका तीर दास द्वारा बिंधे एक मृग को आकर लगा है। हमारे द्वारा मारा मरता तो नरक में जाता, आप मुक्ति दाता के कर-कमलों से स्वर्ण-लोहा उसकी देह को छू गया है। आपने उसे पार उतारने के लिए ही तो तीर चलाया था।

गुरू जी (मुसकरा कर)—मंत्री जी ! आदमी का शिकार करना पाप है कि पुण्य? आदमी का शिकार।

मंत्री–जीवन दाता के हाथ से दी मौत भी जीवन है। उस तन का सौभाग्य है जिसे आपका तीर लगा। मैं कठौर हूं। नीति वाला चाल बाज हूं। पर दाता जी आपके कमान की सौगन्ध है, मैं तो भाग्यशाली होऊंगा यदि एक तीर इस कमान से मेरे शरीर में सर्र कर जाए। इस समय यही भाव है, पर यह मेरा नहीं आपके चरणों का प्रताप है।

गुरू जी–यह दिल तो साधु का है।

मंत्री–नहीं जी ! दिल तो नीतियों के कारण अनीतियों में रहता है। पर आज राव के मन में जो खलबली मची है, उसके चुम्बक आप ही हैं।

गुरू जी–वह कैसे?

मंत्री–मैंने एक मृग मारा था। राव जी ने वैराग्य किया। वह वैराग्य मुझे प्रेम के घेरे में ले आया। आपके दर्शनों ने निशाना ढूंढ़ लिया। खुद ही घायल करके मायल कर दिया।

गुरू जी ने आगे बढ़कर मंत्री को छाती से लगा लिया और कहा–वाहिगुरू यह बिभौर है या भंभौर (हिला देने वाला) प्रेम के चक्र चल रहे हैं।......राव कहां है?

मंत्री–मृत मृग के पास।

गुरू जी–चलो चलें।

मंत्री–राव मेरा स्वामी है, पर आप ज्योति स्वरूप हैं। आप कष्ट न करें, मैं उन्हें बुला लाता हूं।

गुरू जी–मंत्री ! प्रेम नियम रहित होता है, प्रेम का नियम प्रेम है। गहरी आग, पर्वतों को चीर देती हैं मंत्री जी–मां-बाप बच्चों को खुद ही पालते हैं, वे पालने से ही पलते हैं।

मंत्री–सच ! दाता जी सच है। स्याना अपनी फिक्र खुद करने लगता है, बालक की चिंता तो मां-बाप को होती है।

गुरूजी–चेतना यदि बालक हो जाए फिर परमात्मा ही पालना है 'उह बालक वागी पालीऐ। उह बालक वागी पालीऐ।

मंत्री–आपका विरद पतित पावन है। आप अवध से चलकर भीलनी के पास गये थे, वह खुद नहीं आयी थी। आप ही दुर्योधन का घर छोड़कर बिदर के घर रात रहने के लिए और भोजन करने के लिए गये थे। आपने ही गुरू नानक के रूप में एक भीलनी नहीं, एक बिदर नहीं, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, घर-घर, दर-दर जाकर कई भीलनियों और कई बिदर पार लगाये। आपका बिरद माली की तरह है, अपनों को पालना। ब्रह्म बिरद है आपका। आप रचने वाले, पालने वाले और पार लगाने वाले हैं। चींटी से राजा तक सभी की एक जैसी आपको चिंता है। धन्य ! धन्य !

गुरू जी–जैसा आपके चित्त को रूचिकर हो।.......हमने खोये हुओं को ढूंढ़ना है अपनों को इकट्ठा करना है, स्वामी के दर पहुंचाना है 'लोक सुखी परलोक सुहेले'।

इतना कह कर चल पड़े।

मंत्री कुछ धीरे चला, पर गुरू जी जल्दी में थे। रूक कर, मंत्री की तरफ देखकर मुस्कराये–'राव जी किस दिशा में हैं?' मंत्री जी ने उसी दिशा में उँगली कर दी।

दिलों के मरहम अकेले ही चल पड़े। मंत्री साथ जाने में झिझक रहा था। वह चाहता था अकेले ही जाएँ। राव ने किसी और के सामने खुलना नहीं है ये करामाती है, कहीं उसकी चुप को अदब की कमी समझकर नाराज न हो जायें। मंत्री खुद द्रवित होकर भी उनके आलौकिक रूप से अनभिज्ञ था, इसीलिए भ्रम में था। मधुर भाषी, सज्जन स्वामी भी कहीं नाराज हो सकते हैं। महाराज अकेले गये। मृत काले मृग के पास ही राव नयन बन्द किये जंगल में अकेले बैठा था। पास में कोई नौकर कोई साथी शिकारी भी नहीं था। राव ने सभी को भेज दिया था। वे अकेले बैठे थे। आँखें बन्द थीं, पर दाता का रूप, जिसे वणजारे का भेष घर वह अनन्दपुर में एक बार दर्शन कर आया था, अन्तर में बसा था। उसकी लुकाव की चाह इतनी गहरी थी कि तब भी बिना सामने आये चुपचाप दर्शन किये और उनकी मूर्ति को हृदय में बसा कर चला आया था। उस रूप को विस्मृत नहीं किया, मूर्ति दिल से उतरी नहीं. प्रेम की तार टूटी नहीं, याद दिल से हटी नहीं।

हीरे मृग की मृत्यु पर उसका हृदय द्रवित हो गया था, कोमल भावों के कारण राव स्व से बाहर हो गया था,

पर फिर अन्दर बन्द हो गया और अपने छिपे प्रेम के संगीत में खो गया। मंत्री के जाते ही उसने सभी साथियों को नगर भेज दिया था और खुद मग्न बैठ गया था। वह ऐसा समाधिस्थ था कि गुरू जी के आने की चेतना भी नहीं हुई। महाराज ! आत्म चेतना में लीन उसके चेहरे को देखकर गद्गद हो रहे थे। वे चाहते थे जिस तरह गाय दौड़कर अपने बछड़े को गले से लगा लेती है, वैसे ही गले से लगा लें। द्रवित हुए, प्यार में घुल रहे हैं, पर वह मोहनि मूर्ति अपने ध्यान में मग्न, अचल और बेखबर बैठी है। जिसके प्यार में पिरोया हुआ राव बैठा है, जिसके रस में वह लीन है, इस समय वह उनसे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर पा रहा हां, वह अपने आन्तरिक लोक में उनके दर्शन कर रहा है, केवल बाय वातावरण से उसकी चेतना हट गयी है।

सतिगुरू जी उसके प्रेम, उसके इस रूप और अनुपम रूम को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। और उसके प्रेम के आकर्षण में खिचते चले जा रहे थे। कुछ समय यह रंग देखकर आप खड़े-खड़े ध्यान के लोक में चले गये। जिस रूप में रियासत का राजा मग्न था उसी रूप में जाकर आज्ञा दी–'नयन खोलो।'

राव ने नयन खोले। जो दर्शन वह बन्द नयनों से कर रहा था अब उसे प्रत्यक्ष देख रहा था। वह चरणों से लिपट गया। ठोक-ठोक कर बन्द रखे हुए नयनों के फव्वारे फूट पड़े, बहने लगे और चरणों को धोने लगे। उसे नया स्वाद

आ रहा था। उसने चरणों को और कस लिया। अब दाता जी ने जो नयन मूंद कर किसी आलौकिक स्वाद में खड़े थे नयन खोले : बैठ गये, उसका सिर उठाकर गोद में रखा, प्यार किया। इतना प्यार किया जितना कवि अतिश्योक्ति अलंकार में वर्णन कर सकते हैं। वैसे कलगीधर चुप थे, सिर पर हाथ फेर रहे थे, माथे पर प्रेम पूर्ण कर कमल लगा रहे थे, पर मुंह से कुछ भी नहीं कह रहे थे। उधर राव का रोम-रोम पुलकित हो रहा था—'वाहिगुरू' की ध्वनि निकल रही थी—दिल घुल मिल रहा था—

'नाम महा रसु पीउ'

नाम का महारस पिया। प्रेम वाले, वाणी से उज्जवल हो चुके मन से, सभी मैलों से रहित मन से। इस समय पिघल रहे मन में नाम का प्रवेश नाम का रस प्रवेश हो गया, ना जीभ बोली ना कानों ने सुना। 'जैसी भूख तैसी का पूरकु' दाता ने राव को निहाल कर दिया। निहाल हुए राव ने अब नयनों को उठाया, दर्शन किया हर्षित हुआ, झूमने लगा—वाहिगुरू।

राव की चुप ने अब मुहर तोड़ दी—एक नये अन्दाज में। राव का स्त्री से प्रेम सिर्फ स्त्री-मात्र नहीं था, उसका प्रेम वाहिगुरू के प्रकाश में था। राव का मनोरथ पूर्ण हो गया। अब वह चाहता है कि रानी की इच्छा भी पूर्ण हो—वह भी दर्शन करे। उसने प्यार से कहा—महाराज जी ! घर चलो, यदि यहीं से मुड़ गये तो मेरी स्त्री दर्शनों

से वंचित रह जायेगी।' धीरे से हाथ जोड़कर राजा ने कहा–'कृपा...पर फिर रूक गया।

विरद पाल बोले–सत्य वचन। चलो आज रात बिभोर ही ठहरेंगे। उठो चलें। राव उठा, दोनों चल पड़े। शिकार वहीं पड़ा रह गया। मंत्री और दास एक तरफ रह गये, सिख और सेवक दूसरी तरफ। जहाँ थे वहीं प्रतीक्षा में बैठे रह गये। (बाद में सभी सामान राजा के सेवकों तथा सिखों ने सम्भाला।) प्रेम की डोर किसी और तरफ मुड़ गयी थी। दायीं तरफ साहिब जी थे, बायीं तरफ राव। राव का हाथ महाराज जी के हाथ में था। वे पैदल चलते हुए बिभोर पहुंच गये। प्रकृति भी चतुर है, मानो जानती है कि राव लुकाव-छिपाव चाहता है। वन में कोई मृग नहीं मिला, आकाश में कोई पक्षी नहीं उड़ा। ऊंचे आसमान में बादल छा गये जिससे कहीं सूर्य या चांद की नजर न लगे–रास्ते में कोई राहगीर भी नहीं मिला। नगर में पहुँचे तो रात हो गयी थी। किसी ने ध्यान नहीं दिया–साहिब और राव निकल गये। महल में प्रवेश करते ही राव ने पहरेदार को हुकुम किया कि जंगल से वजीर और सिखों को बुला ले। अब दोनों अन्दर चले गये और चलते-चलते रानी के कमरे के पास पहुँच गये। वहां कल वाला दृश्य नज़र आया। रानी अरदास कर रही थी। वैसी ही अरदास जैसी उसने कल की थी। दोनों साहिब और राव बाहर ही चुपचाप खड़े हो गये।

पर कुछ क्षण बाद महाराज जी ने एक कदम अन्दर रखा और अचल खड़े हो गये। निर्मल आत्म रंग और प्रेम में विह्वल दुलारी की अरदास सतिगुरू जी ने सुनी, आप के दैविक नयन भी भर आये। हाय ! प्रेम क्या जादू है? हे वाहिगुरू ! ऐसे सच्चे प्रेम रस के लिए ही तो जगत में आपका प्रकाश है।

जब अरदास हो गयी और रानी ने नयन खोले तो क्या देखती है कि आँखों के आगे ध्यान मूर्ति प्रत्यक्ष खड़ी है। उसे लगा कि उसकी ध्यान मूर्ति का कहीं यह प्रतिबिंब तो नहीं। नयन बन्द करके फिर खोले। राजा का स्वभाव तो दिखावे का नहीं, वह आगे भी नहीं बढ़ रहा और न ही कहता है–आ गये हैं। चुप, सम्मान के साथ दहलीज में प्यार में मग्न, नाम रस मे लीन, मूर्ति की तरह खड़ा है। प्रियवर आश्चर्य चकित है, नयनों को खोलती और बन्द करती है। दाताजी अव्यक्त पीड़ा के ज्ञाता है। खुद ही बोले–बेटा जी ! हम आ गये। तेरे पति को वाहिगुरू ने अपने प्यार मंडल में बसा लिया है। आओ, तुम भी वाहिगुरू के देश चलो।

प्रियवर–आप हो? (दौड़कर) आप हो? हैं ! सचमुच में आप हो? नहीं मेरे नयन ध्यान को देखते हैं और मेरे कान ध्यान मूर्ति की वाणी सुनते है।

गुरू जी–आओ बेटा ! हम आ गये हैं।

रानी ऊपर नीचे देखती है, दायें-बायें देखती है—अपनी हथेलियों का आँखों के आगे करके देखती है, फिर बढ़ती है, झिझकती है, इसी समय दहलीज के पास खड़े अपने पति को देख लेती है। 'हां ठीक, यह तो जाग्रत अवस्था है, वे आ गये हैं।' अब दौड़ कर चरणों में गिर पड़ी, फिर घुटनों के बल उठी और बड़ी कोमलता से बोली—'दाता जी ! पति जी से मिले हो।'

गुरू जी—मिले हैं।

प्रियवर—मैं तो साहिब जी जल्दबाजी करती हूं। एक बार फिर मिलो, मेरे बेजबान पति जी को गले से लगा लो, मैं देखूं और मेरे नयनों को शीतलता मिले। फिर नयनों से आपके चरणों का स्पर्श करूं। दाता ! कृपा करो। मेरे प्रिय को गले से लगा लो। मैं देखूं, मेरे नयनों को शीतलता मिले।

इस प्रेम और स्वं को न्यौछावर करने वाले प्रेम को देखकर साहिब जी के नयन भर आये। राव को गले से लगा लिया। रानी ने देखा, नयन शीतल हुए। अब विह्वल होकर चरणों में गिर पड़ी और चरणों से चिपक कर बेसुध हो गयी।

हाय ! इन्सान के अन्तर की भूख अपने से उच्च के लिए है, हां, तेरे लिए है हे अदृश्य ! तेरे लिए है। इन्सान के अन्दर तेरे लिए यह प्रीति कैसे छिपकर रहती है इसी छिपी प्रीति के कारण ही तो मनुष्य तेरे दर्शनों के लिए तड़पता है। वह हमारे नयनों में प्रकाश डाले जिससे हमारी

भौतिक पदार्थ देखने वाली आंखें उसके दर्शन कर सकें और अन्तर की इच्छाएँ पूरी हो सकें।

जी हां, जरा दर्शन करो, रब का नूर कैसे खड़ा है और प्यार का इच्छुक राव कैसे छाती से लगा आलौकिक प्यार वाली कलाई के आलिंगन में है और किस तरह आत्म रस में लीन प्रियवर चरणों को आलिंगन में लिये पड़ी हुई है।

महाराज का दायां हाथ झुका। रानी को बांह से पकड़ कर उठाया, उसे खड़ा किया, सिर पर प्यार से हाथ फेरा और कहा–बेटा कहो–वाहिगुरू।

वाहिगुरू कौन कहे? जीभ ने कहा, पर वह अकेली जीभ पर समाता नहीं है उसका वेग असहनीय है। सभी रोम जीभ बन गये, पर वह अभी भी नहीं समाता अन्दर हृदय में चला गया, अन्दर से और अन्दर उससे भी अन्दर हैं ! रानी को अब होश आयी और उसने कहा–वाहिगुरू।'

कण–कण में वाहिगुरू दिखायी देने लगा। आत्म लहर आयी, रस छा गया। रस–आनन्द अन्दर बाहर छा गया। रस मग्न हो गये।

जोड़ा वाहिगुरू प्रेम से रंग गया, जो खुद से प्यार करता, अनन्त की इच्छा रखता था, अनन्त के प्रकाश की ओर चल पड़ा। रंग गया परमात्मा के रंग में, रस–रंग वाला पवित्र जोड़ा....।

अब महाराज जी को चौकी पर बिठाया, चरण धोये, पोंछे, पंच-स्नान करवाया, इतने में भोजन तैयार होकर आ गया–

भखय भोज लेहज अर चोसा।
कर पिआर वड थार परोसा।
चौंकी चारू बिसाल डसाइ।
तां पर सुजनी बिंसद बिछाइ।
तां पर बिनती भाखि बिठाए।
दूसर चौंकी अग्र टिकाए।
तिस पर थार परसि धरयो है।
हाथ जोरि ढिग आप खरयो है।।१०।।

(सूरज प्रकाश)

महाराज जी ने भोजन किया, रात को सुन्दर स्थान में आराम किया। डेरा भी आ गया। सभी सिखों को अच्छे स्थान पर डेरा मिल गया था। रसद, प्रसाद, चारपाइयां, बिस्तरे आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ पहुँच गयी थीं। दूसरे दिन एकान्त में राव जी ने विनय की–'यदि कष्ट न हो तो कृपा करके अब यहीं ठहरो।' दाता जी सुनकर मुसकरा पड़े और बोले–'सत्य वचन'।

अब बिसाली से सभी सिख, परिवार, संगत, डेरा बिभोर आ गया। राव के अनोखे प्रेम और रानी के अद्वितीय प्रेम भाव के कारण गुरू जी इतनी देर वहां रहे कि दूर-दूर से संगत वहाँ पहुँचने लगी। मानो बिभोर ही उनका निवास स्थान हो गया हो।

अनन्दपुर का आनन्द यहां था, सुन्दर छाया, पुष्प-उपवन और नदी का अनुपम दर्शन, ऊँचे-नीचे स्थानों के दृश्य सभी थे। जगत को पार लगाते, गुरू जी लम्बे समय तक वहां रहे–

इस प्रकार प्रभ सैर सराहा।
बसे तहाँ आनन्द पाहा।।३५।।......

ऊंच नीच थल बिखम कि सम हैं।
बहु रमणीक सुगम दुरगम हैं।

चलत बेग ते रिमल वा है।
बिना धूलि, बन बहु अवगाहै।।३७।।

कुसमति बन की प्रभा बिलोकैं।
संघने अधिक सुगंधी रोकैं।

जहिं लग इछहिं विचरंति आवैं।
इस प्रकार निस दयोस बितावैं।।३८।।......

सुनि सुनि करि सिख संगत सारी।
आवहि दरशन इच्छा धारी।।३९।।

पूरब दक्खण पसचम केरे।
लै लै कर उपहार धनेरे।

परे बहीर चले बह आवै।
गुरबानी पठि गुरू धियावैं।।४०।।

इस प्रकार सतिगुरू बिसरामे।
अचल सथान शैल अभिरामे। (गु० प्र० सूरज)

कुछ समय वहां रहने के उपरान्त सतिगुरू जी फिर आनन्दपुर आ गये।

OOO

कंबदी कलाई

सुपने विच तुसी मिले असानूं
असां धा गलवकड़ी पाई
निरा नूर तुसीं हत्थ न आए
साडी कम्बदी रही कलाई,
धा चरनां ते सीस निवाया
साडे मत्थे छोह न पाई
तुसीं उच्चे असीं नीवें सां
साडी पेश न गैया काई,
फिर लड़ फड़ने नूं उठ दौड़े
पर लड़ ओह 'बिजली लहरा'
उडदा जांदा, पर उह अपणी
छोह सानूं गया लाई–
मिट्टी चमक पई इह मोई
ते तुसीं लूआँ विच लिशके,
बिजली कूंद गई थर्रादी
हुण चकाचूँध है छाई।